वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल ४, बुधवार, दिनाङ्क २२-०६-१९६६
गाथा ३८ से ४२ प्रवचन नं. १५

३८ (गाथा) थोड़ी बाकी है। **जीव-अजीव का भेद.....** योगसार।

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ॥३८॥

हे धर्मी! ऐसा सम्बोधन करके कहते हैं, **हे योगी!** योगसार है न? आत्मा... जड़ और चैतन्य दोनों अत्यन्त पृथक् हैं – ऐसा जो भेदज्ञान करे तो आत्मा को – स्वयं को शुद्ध ज्ञान और आनन्दमय देखे और अजीव को राग-द्वेष, कर्म आदि स्वरूप देखे। समझ में आया?

जीवाजीवई भेउ जो झाणइ जो जीव-अजीव का भेद जाने। जीव, वह ज्ञान, शुद्धआनन्द आदि स्वरूप है; अजीव, ये सब रागादि, शरीरादि, कर्म – ये सब अजीव हैं। दोनों का सम्बन्ध न होवे तो बन्ध न होवे और दोनों का सम्बन्ध छूटे तब मुक्ति होती है; इसलिए इसे इन दोनों का ज्ञान भलीभाँति करना चाहिए।

मोक्खहँ कारण एउ यही मोक्ष का कारण है – ऐसा भगवान ने कहा है। जीव -अजीव का भेदज्ञान, वह मोक्ष का कारण है – ऐसा कहा है। समझ में आया? 'भेदज्ञान, वह ज्ञान है; शेष बुरा अज्ञान' – भेदज्ञान अर्थात् आत्मा और जड़ दो चीजें हैं न? न होवे तो इसे इस सम्बन्ध का बन्ध और बन्ध के अभावरूपी मुक्ति – यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती। इससे आत्मा और अजीव दोनों के लक्षण भिन्न हैं, दोनों का स्वरूप भिन्न है, दो के भाव अलग हैं – ऐसे यदि दोनों को भलीभाँति भिन्न जाने तो उसे मोक्ष का कारण -पर से भिन्न स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की दशा प्रगट होती है; अतः उसके

कारण, **हे योगी!** भगवान ने तुझे ऐसा कहा है – ऐसा कहते हैं। जीव-अजीव का भेदज्ञान होवे तो इसे मोक्ष-कारण होता है – ऐसा भगवान ने कहा है। इसमें बहुत आ गया है।

अन्त में समयसार का श्लोक भी दिया है। **जीव और अजीव, लक्षण से ही भिन्न है, इसलिए ज्ञानीजन अपने को सर्व रागादि और शरीरादि से ही भिन्न ज्ञानमय प्रकाशमान एकरूप अनुभव करते हैं।** पर से भिन्न और स्व-स्वभाव से एक आत्मा। अपने शुद्धस्वभाव से एक अभेद आत्मा और रागादि से पर (-भिन्न) – ऐसा भेदज्ञान करे तो उसे स्वभावसन्मुख की एकता होती है और उसमें से परसन्मुखता जाती है, तो निश्चित इसे अनुभव करने से मोक्ष होता है। इसे मुक्ति अर्थात् निर्मलानन्द शुद्ध, राग से भिन्न है – ऐसा अन्तर भासित होने से – एकता होने से राग से छूटकर वीतराग पद को पाता है। अब सार कहते हैं।

☆ ★ ☆

आत्मा केवलज्ञान स्वभावधारी है

केवल-णाण-सहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ चाहहि सिव-लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ॥३९॥

योगी कहे रे जीव तू, जो चाहे शिव लाभ।
केवलज्ञान स्वरूप निज, आत्मतत्त्व को जान॥ ३९॥

अन्वयार्थ – (**जोइ**) हे योगी! (**जोइहिं भणिऊँ**) योगियों ने कहा है कि (**तुहुँ केवल-णाण-सहाउ सो अप्पा जीव मुणि**) तू केवलज्ञान स्वभावी जो आत्मा है उस ही को जीव जान (**जइ सिय-लाहु चाहहिं**) यदि तू मोक्ष का लाभ चाहता है (**भणइ**) ऐसा कहा है।

☆ ★ ☆

३९ – **आत्मा केवलज्ञान स्वभाव का धारक है।** पहले, जीव-अजीव दो भिन्न किये न? तब अब जीव की पहचान देते हैं। पहले सामान्य बात की थी। ग्रन्थकार आचार्य स्वयं कहते हैं –

केवल-णाण-सहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ चाहहि सिव-लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ॥३९॥

हे योगी! योगियों ने कहा है..... सर्वज्ञ परमेश्वर अथवा सन्तों ने कहा है कि **तुहुँ केवलणाण सहाउ सो अप्पा जीव मुणि** तू केवलज्ञान-स्वभावी आत्मा को जान। केवलज्ञान, अर्थात् यहाँ केवलज्ञान पर्याय की बात नहीं है। केवलज्ञान-अकेला ज्ञानस्वभाव, अकेला ज्ञानस्वभाव; उसमें सर्वज्ञस्वभाव आ गया, परन्तु अकेला स्वभाव – ज्ञानस्वभाव आत्मा। समझ में आया? केवलज्ञान अर्थात् उस पर्याय का केवलज्ञान, (उसका) यहाँ काम नहीं है।

यह तो पूरा ज्ञानस्वरूप चैतन्य, 'दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो' – आता है न? 'दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो, तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब; तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब, चरित्र-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा, वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब, अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा' – स्वरूप की स्थिरता का ध्यान कैसे वर्ते? ऐसा। बाकी दर्शनमोह, जीव और अजीव की एकताबुद्धि का नाश होने पर आत्मा, देह से भिन्न अकेला – केवलज्ञान की मूर्ति है – ऐसा अनुभव में आना चाहिए। समझ में आया?

अकेला आत्मा ज्ञानस्वरूप, देह से भिन्न चैतन्य। देह से भिन्न अथवा देह अर्थात् रागादि सब पर में जाते हैं। उनसे (भिन्न) अकेला चैतन्यस्वरूप है, वह केवलज्ञान स्वभाव का धारक है। अकेला ज्ञानस्वभाव, ऐसा। केवल अर्थात् अकेले ज्ञानस्वभाव का धारक है। वह शरीर को नहीं धारता है, कर्म को नहीं धारता है, विकार के भाव को नहीं पकड़ता है, अपने में नहीं रखता है; अकेला केवलज्ञान चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वभाव सर्वज्ञ स्वभाव का धारक (है)। केवलज्ञानस्वभावी शब्द लिया है न? फिर इन्होंने 'धारक' शब्द का प्रयोग किया है।

केवलणाण सहाउ उसका स्वभाव ही अकेला ज्ञानस्वरूप चैतन्य है। ऐसा अन्तर में जीव का भान, ज्ञान होने पर **मुणि जीव तुहुँ। जइ चाहहिं सिव-लाहु** यदि मोक्ष का लाभ चाहता हो, अर्थात् निर्मल आनन्द की पूर्ण पर्याय की प्राप्ति को चाहता हो तो इस

केवलज्ञानस्वभाव धारक आत्मा को तू जान। देखो! यहाँ दूसरे शास्त्र को जान, यह कुछ बात नहीं की है। समझ में आया?

यदि तू मोक्ष का लाभ चाहता हो ..... मोक्ष अर्थात् पूर्ण पवित्रता। पूर्ण पवित्रता की पर्याय को प्रगट करना चाहता हो, ऐसा। केवलज्ञान और केवलदर्शन, परमानन्द – ऐसी दशा को प्रगट करने की भावना हो तो भगवान ज्ञानस्वभाव, अकेला ज्ञानस्वरूपी है – उसका अनुभव कर। अकेले ज्ञानस्वभाव का अनुभव करने से तुझे मुक्ति मिलेगी। कहो, समझ में आया इसमें? लो! इसमें केवलज्ञानस्वभावी **मुणि** जानना – यह तुझे मोक्ष के लाभ के लिए कारण है। जानना आया, इसमें चारित्र तो नहीं आया? अन्य (लोग) कहते हैं कि ज्ञान-ज्ञान आया, परन्तु इसमें चारित्र नहीं आया....? परन्तु जो आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूप सूर्य है – ऐसा जानने से प्रतीति और स्थिरता व आनन्द का अंश – सब साथ आये हैं। यहाँ बहुत संक्षिप्त कहा है। (गाथा) ३८ में जीव-अजीव की व्याख्या की, फिर (३९ में) जीव है, वह ऐसा है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अकेली चैतन्यमूर्ति, केवल की मूर्ति है, उसमें पुण्य और पाप, रागादि, शरीर, कर्म-फर्म कुछ नहीं। कुछ नहीं, यह पर तो नहीं और है तो अकेला ज्ञानस्वभाव परिपूर्णता से भरा आत्मा है। ऐसे ज्ञानस्वभाव को **मुणि** जान, जान। इस जानने में मुक्ति आ गयी। मोक्ष का मार्ग – सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। यह केवलज्ञान की मूर्ति आत्मा है – ऐसी श्रद्धा, वह समकित; अकेला ज्ञानमय आत्मा, उसका ज्ञान, वह ज्ञान और अकेला ज्ञानमय आत्मा, उसकी रमणता, वह चारित्र है। कहो, समझ में आया इसमें?

प्रत्येक आत्मा को जब निश्चयनय से देखा जाए.... पुद्गल को स्वभाव से देखा जाए, **तब देखनेवाले के सामने अकेला एक आत्मा सर्व पर के संयोगरहित खड़ा हो जाएगा।** ऐसा कहते हैं। पर से भिन्न देखेगा तो अकेला आत्मा दिखेगा। उसमें दूसरा-दूसरा शामिल नहीं होगा – ऐसी जरा लम्बी बात करते हैं। आठ कर्म से रहित, शरीर से रहित, राग-द्वेष और भावकर्म से रहित देखता है – ऐसे आत्मा का अनुभव करो। आत्मा के अनुभव से यह सब चीजें अलग है। समझ में आया?

उसके गुणों का वर्णन किया है। आत्मा में एक प्रधानगुण ज्ञान है। उसे ही

केवलज्ञानस्वभाव कहते हैं। उस गुण से ही दूसरे गुणों का प्रतिभास होता है – ऐसा कहते हैं। आत्मा में ज्ञान है, उस ज्ञान से दूसरे गुणों का भान होता है। दूसरे गुणों से ज्ञान का भान – ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। उसे यहाँ केवलज्ञानसवभावी विशेष क्यों कहा? कि ज्ञानस्वभाव को जानने से, वह ज्ञान दूसरे आनन्द का, श्रद्धा का, अस्तित्व का, वस्तुत्व का (– ऐसे) अनन्त गुणों का प्रतिभास ज्ञान करता है। समझ में आया? दूसरे गुण अस्ति रखते हैं परन्तु वे गुण नहीं जानते अपने को; नहीं जानते ज्ञान को। यह ज्ञानगुण ऐसा है कि जो ज्ञान स्वयं को जानते हुए, दूसरे गुण ऐसे हैं – ऐसा स्वयं जानता है। समझ में आया? आनन्द का अनुभव होता है परन्तु उस आनन्द के अनुभव को ज्ञान जानता है कि यह आनन्द है। समझ में आया?

इसी तरह ज्ञानस्वरूपी आत्मा की श्रद्धा-सम्यग्दर्शन (होवे), उसे ज्ञान जानता है कि यह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन जानता नहीं। ज्ञान जानता है कि मैं त्रिकाल अस्तित्व हूँ। ज्ञान में यह प्रतिभास होता है। ज्ञान में ऐसा स्वभाव है, प्रतिभास होता है कि यह त्रिकाल अस्ति है। त्रिकाल अस्ति है, वह स्वयं ज्ञान नहीं करता, क्योंकि उसमें ज्ञान स्वभाव नहीं है। समझ में आया? ज्ञान है, वह त्रिकाल अस्तित्व है, यह त्रिकाल है – ऐसे अस्तित्व की सत्ता का बोध ज्ञान के द्वारा होता है। समझ में आया?

अन्य गुणों का प्रतिभास होता है, उसे ही सर्वज्ञपना कहते हैं। लो! **प्रत्येक आत्मा स्वभाव से सर्वज्ञ है।** प्रत्येक आत्मा स्वभाव से तो सर्वज्ञस्वरूपी है। सर्वज्ञ अर्थात् ज्ञानस्वभाव कहा तो यहाँ ज्ञान में सभी गुणों का ज्ञान आ गया और वह सर्वज्ञस्वभावी हो गया। उन समस्त गुणों का जाननहार और अपना जाननहार – ऐसा आत्मा का स्वभाव, वह सर्वज्ञस्वभाव है। अद्भुत बात, भाई! परन्तु इसमें क्रिया क्या करना? वे कहते हैं – तुम्हें बातें करनी हैं – ऐसी बातें कितने ही करते हैं। कौन कहता था? कल कोई (कहता था)। राणपुरवाले उन 'लल्लूगोविन्दजी' वाले न? आहा....हा...! भाई! क्रिया की व्याख्या क्या? यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इसे जानना, वह क्रिया नहीं है? इसे जानना, वह क्रिया है। यह ज्ञानस्वरूपी आत्मा अनन्त गुण को जाननेवाला – ऐसा ज्ञान, उसकी निर्विकल्प प्रतीति करना – यह प्रतीति करना क्रिया नहीं है?

मुमुक्षु – बाहर परिवर्तन नहीं दिखता न।

उत्तर – बाहर में परिवर्तन क्या दिखे ? बाहर में कहाँ वह चीज थी ? बाहर में वह चीज कहाँ थी कि उसका परिवर्तन बाहर में दिखे ? क्या कहा ? समझ में आया ? क्या कहा ? यह ज्ञानस्वरूपी भगवान बाहर में कहाँ है ? शरीर में, वाणी में, उनमें तो नहीं; तो उनमें नहीं, तब उनका परिवर्तन बाहर में कहाँ दिखेगा ? कुछ समझ में आया ? उसका परिवर्तन तो, उसमें जहाँ स्वयं है, वहाँ दिखेगा।

ज्ञानस्वरूपी आत्मा माना नहीं था, जाना नहीं था, तब (इस) राग को एकत्वरूप जानकर, मानकर, लीन होता था। अब वह परिवर्तन कहाँ होगा ? शरीर में होगा ? पर में होगा ? क्योंकि फेरफार-विकार की अवस्था भी इसमें हुई थी। है ? इसमें हुई थी, यह बदला तो परिवर्तन तो इसमें होगा ? शरीर, वाणी, मन में होगा ? बाहर में परिवर्तन होगा ? कहो ? मन्दिर में यह कहाँ बैठा है ? यह बैठा है ज्ञान में। अब यह ज्ञान में बैठा है या ज्ञान में एकत्व – राग करके बैठा है – इसका निर्णय तो अन्दर में है या बाहर में है ? वहाँ बैठे 'स्वाध्याय मन्दिर' के बाह्य क्षेत्र में वह आया नहीं, वह तो आता नहीं, वह आत्मा तो अपने ज्ञान क्षेत्र में है। अब वह ज्ञानक्षेत्र में है, वह बाह्य क्षेत्र में बैठा दिखे, (वह) अन्दर में क्या करता है ? यह तो अन्दर की बात रही। हैं ? कि मैं यहाँ आया, इसलिए मुझे निवृत्ति मिली, मैं यहाँ आया, इसलिए मेरे राग घटा – यह तो मान्यता सब अन्तर में एकाग्र करते हैं। यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है, यह तो बाह्य लक्ष्य से निर्णय करता है।

अन्तर में आत्मा ज्ञानस्वभाव है, चैतन्यबिम्ब है – ऐसा जो निर्णय होना, उसकी जो क्रियाओं का परिवर्तन होना, वह तो उसकी दशा में होता है तो उस दशा का जाननेवाला (होवे), उसे दशा का पता पड़े। कहो, समझ में आया ? दूसरे परमाणु, शरीरादि तो पर-पदार्थ हैं, उसकी अवस्था का बदलना, घटना, कम होना, उसके माप से आत्मा में निवृत्ति का माप आया – वह कहाँ से आया ? पृथक ही पड़े हैं, कब अन्दर एकत्रित हो गये थे ? प्रत्येक रजकण पृथक् हैं। इसकी सत्ता अस्तिरूप तो ज्ञानस्वरूप अस्तिरूप है, अब ऐसा अस्तित्व है, उसे न मानकर मैं इस शरीर का कुछ करता हूँ-राग करता हूँ-यह करता हूँ, यह करता हूँ, यह करता हूँ, यह करता हूँ तो जो करता हूँ – ऐसी सत्तावाला

माना। अब बाहर में भले स्वाध्याय मन्दिर में बैठा हो या हाथ ऐसे करके बैठा हो परन्तु बैठा है अन्दर में-बाह्य में। समझ में आया? हरिभाई!

ज्ञानस्वभावी भगवान.... यहाँ तो यह कहा न? ज्ञानस्वभावी आत्मा। देखो! एक मूलस्वभाव इन्होंने लिया... मूल पाठ में है न? **भणइ जोइ जोइहिं भणिऊँ** हे योगी! योगियों ने ऐसा कहा है, सन्तों ने ऐसा कहा है.... तो इसका अर्थ कि तू ज्ञानस्वभाव है – ऐसी जो दृष्टि पलटे और रागादि नहीं – ऐसी जो दृष्टि होवे, उसका परिवर्तन तो उसकी दशा में होता है, अरूपी में होता है। यह जाननेवाला जाने, ज्ञान से जाने कि यह परिवर्तन हुआ (या) नहीं हुआ... यह बाहर की क्रिया से कैसे ज्ञात हो इसमें? समझ में आया?

अन्दर में परिवर्तन हुआ। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, राग का कण भी नहीं – ऐसी दृष्टि हुई, यह परिवर्तन तो पर्याय में हुआ। इस अरूपी ज्ञान ने जाना। अब इस बाहर की क्रिया में तो लड़ाई में खड़ा दिखे.... लड़ाई में खड़ा दिखे, फिर भी अन्तर में पूरा पलटा खाया है कि जिसमें अकेला ज्ञानस्वभावी आत्मा का स्वामी होता है और राग तथा उसका स्वामी नहीं होता। यह अन्दर की दशा में ज्ञात होता है या बाहर से ज्ञात होता है?

एक (जीव) बाह्य से अत्यन्त त्याग करके बैठा है। लो! स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, नग्न होकर बैठा है परन्तु वह तो बाह्य चीजें संयोग में कम दिखाई दी परन्तु अन्दर में संयोगभाव को अपने स्वभाव के साथ मानता है, रागादि विकारभाव संयोगी है, उसे स्वभावभाव – चैतन्य का त्रिकालभाव है, उसके साथ मानता है तो उसे कोई भी संयोग छूटा नहीं है, जरा भी नहीं छूटे हैं, अत्यन्त संयोग के विकार में ही पड़ा है। यह माप बाहर से होता है या अन्दर से होता है? बाहर में वह कहाँ आता है तो बाहर से हो? कहो, इसमें समझ में आया? अपना निर्णय करे और फिर दूसरे का काम.... दूसरे का क्या काम है इसे? ऐसा ज्ञानस्वभाव आत्मा का है।

इसमें ऐसा एक दर्शनस्वभाव इसके साथ इन्होंने लिया है। ऐसे सुखस्वभाव है, वीर्यस्वभाव है, चैतन्य का अमूर्तस्वभाव है। इतने मूलस्वभाव इन्होंने अधिक लिये हैं। शास्त्र के दूसरे आधार लेकर भी लिये हैं।

☆ ★ ☆

ज्ञानी को हर जगह आत्मा ही दिखता है

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ।
हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ॥४०॥

को समता किसकी करे, सेवे पूजे कौन।
किसकी स्पर्शास्पर्शता, ठगे कोई को कौन?
को मैत्री किसकी करे, किसके साथ ही क्लेश।
जहँ देखूँ सब जीव तहँ, शुद्ध बुद्ध ज्ञानेश॥ ४०॥

अन्वयार्थ – (को सुसमाहि करउ) कौन तो समाधि करे **(को अंचउ)** कौन अर्चना या पूजन करे **(छोपु-अछोपु करिवि)** कौन स्पर्श-अस्पर्श करके **(को वंचउ)** कौन वंचना या मायाचार करे **(केण सहि हल कलहु समाणउ)** कौन किसके साथ मैत्री व कलह करे **(जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ)** जहाँ कहीं देखो वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होता है।

☆ ★ ☆

४० गाथा... **ज्ञानी को हर जगह आत्मा ही दिखता है।** इस देह में विराजमान चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द है, यह देहादि वाणी आदि तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। रागादिभाव होते हैं, वह तो विकार, दोष है, वह आत्मा नहीं है; अत: आत्मा के जाननेवाले को सर्वत्र आत्मा ही भासित होता है, यह बात यहाँ अधिक कहते हैं।

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ।
हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ॥४०॥

देखो, यहाँ जोर है। जहाँ देखते हैं, वहाँ आत्मा दिखता है। **कौन समाधि करे, कौन अर्चा-पूजा करे....** भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्यसूर्य प्रभु आत्मा है। ऐसा जहाँ अन्तर में भासित हुआ, अब उसे समाधि करूँ – यह कहाँ रहा? स्वरूप ही ज्ञान है। मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ – ऐसा जहाँ भासित हुआ, वहाँ उसे दूसरे सभी आत्मा

भी ज्ञान और आनन्दमय हैं – ऐसा भासित होता है। समझ में आया?

यह आत्मा ही ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। यह शरीर, वाणी तो जड़ है, मिट्टी है। दया, दान, काम, क्रोध के शुभ-अशुभभाव होते हैं, वह तो विकार है, उस विकाररहित आत्मा अन्तर में जहाँ जाना, कहते हैं कि, उसे अब क्या करना रहा? समझ में आया? अब **कौन समाधि करे.....** समाधि अर्थात् ऐसे स्थिर होओ... जाना कि आत्मा है, उसमें स्थिर हुआ ही है। समझ में आया?

कौन अर्चा या पूजन करे.... स्वयं भगवान ज्ञानस्वरूपी आनन्दमूर्ति का जहाँ भान हुआ, वह आत्मा में ही स्वयं परमात्मस्वरूप का धारक, किसकी अर्चा-पूजा करना इसे अब? पूजा और अर्चा जो पर की करता था, वह तो शुभभाव था। भगवान की पूजा और अर्चा यह तो शुभ-पुण्यभाव था। वह पुण्यभाव जहाँ मैं नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूपी चिदानन्द आत्मा हूँ – ऐसा भान होने पर वह किसकी पूजा करे? वह तो अपनी पूजा करता है। आहा...हा...! अर्चा.... अर्चा है न? किसे अर्चे? भगवान को अर्चता है न? पूजा करता है, वह तो शुभभाव होता है तब होता है। परन्तु जहाँ आत्मा ही शुभभाव से भिन्न भासित हुआ, चैतन्यस्वरूप भासित हुआ और उसमें स्थिर हुआ तो वह स्वयं की पूजन करता है, स्वयं, स्वयं को अर्चना और बहुमान देता है। अब उसे दूसरे की पूजन करना नहीं रहा। समझ में आया?

कौन स्पर्श-अस्पर्श.... करे। समझ में आया? यह अमुक हाथ का स्पर्श करना है, अमुक हाथ का स्पर्श नहीं करना, यह स्पर्श करने योग्य है, यह अस्पर्श करने योग्य है, यह छूने योग्य नहीं, यह छूने योग्य नहीं, यह छूने योग्य है.... परन्तु वस्तु के ज्ञानस्वरूप में यह है कहाँ? किसे स्पर्शे और किसे अस्पर्शे? स्पर्श-अस्पर्श की बुद्धि तो बाह्य लौकिक में है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का स्वरूप जहाँ स्वयं ही आत्मा सच्चिदानन्द है – ऐसा अन्तर में भान का भास और भाव प्रगट हुआ तो कहते हैं कि किसके साथ स्पर्श -अस्पर्श? फिर इस चीज को छूना नहीं, इस माँस को छूना नहीं, पानी को छूना, अच्छी चीज को (छुआ जाता है), यह वस्तु में कहाँ रहा? समझ में आया? **छोपु अछोपु करिवि** है। कौन स्पर्श करे? वस्तु ही भगवान आत्मा अपने चैतन्यमन्दिर में विराजमान है, उसे

जहाँ अन्तर में जाना, देखा, अनुभव किया – ऐसे आत्मा को अब स्पर्श-अस्पर्श कुछ नहीं रहता। समझ में आया ?

'को वंचउ' कौन वंचना या मायाचार करे ? भगवान आत्मा जानने-देखनेवाला चिदबिम्ब है, ऐसा आत्मा का भान हुआ तो दूसरे आत्माएँ भी ऐसे हैं। दूसरे देह में विराजमान आत्मा भी देह, वाणी से भिन्न, इस मिट्टी से भिन्न हैं और इन राग-द्वेष से भी पृथक् अन्दर चैतन्य आनन्द है। किसे ठगूँ और किसे नहीं ठगूँ? ऐसा कुछ उसमें नहीं रहता। आहा...हा... ! **कौन वंचना या मायाचार करे ?** किसके साथ मायाचार करे ? सब भगवान आत्मा चैतन्य ज्योत प्रभु आत्मा है, आनन्द की मूर्ति वह आत्मा है। विकार और शरीर, वह आत्मा नहीं है – ऐसा जिसने आत्मा को जाना, वह किसे ठगे ? किसके साथ माया करे ? सब भगवान दिखे, उसमें माया किसके साथ करे ? – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु... ! यह योगसार है। चैतन्यभगवान ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु है – ऐसा जहाँ योग अर्थात् अपने भाव का जुड़ान जहाँ स्वभाव के साथ हुआ, अब वह दूसरे के साथ मायाचार, वंचना करने का कहाँ रहा ? समझ में आया ? इस आत्मा को जानता नहीं था, तब तक वह मायाचार करता था। किसी दोष को छुपाना, इसे ऐसा बताऊँ, इसे यह बताऊँ, यह तो आत्मा को जानता नहीं था कि आत्मा ऐसा है ही नहीं। राग, द्वेष और माया, कपट यह माया आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। इस आत्मा को जानने पर कौन मायाचार करे ?

कौन किसके साथ मैत्री और कलह करे ? शत्रु... शत्रु... ओ...हो...हो... ! यह आत्मा, देह के रजकणों से भिन्न और पुण्य-पाप के राग से भिन्न है – ऐसा जहाँ ज्ञानस्वरूपी आत्मा का भान हुआ, वह किसके साथ मैत्री करे ? सब परमात्मा हैं, मैत्री किसके साथ करना ? कहो, प्रवीणभाई ! किसका भजन करना ? – ऐसा कहते हैं। यह भजन करनेवाला आत्मा जगा, चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, आनन्द का कन्द, वह अतीन्द्रिय आनन्द के मनके अन्दर फिराता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? देह से, यह रजकण, मिट्टी, धूल, राग, मलिनता है। निर्मलानन्द प्रभु आत्मा, वह मैं हूँ – ऐसा जहाँ अन्दर में भासित

हुआ, उसे तो निर्मल ज्ञान और आनन्द के मनके पर्याय में फिरते हैं। किसे फेरना? कौन सी माला इसे गिननी? किसकी माला गिननी? आहा...हा...! किसके साथ मैत्री करना? समझ में आया? किसके साथ क्लेश करना?

कलहु अर्थात् शत्रुता। किसके साथ क्लेश करे? भगवान आत्मा शान्त-आनन्द ज्ञानमूर्ति को आत्मा कहते हैं – ऐसा शान्तस्वभाव जहाँ ज्ञात हुआ, (वहाँ) किसके साथ क्लेश (करे)? स्वयं के साथ क्लेश नहीं, स्वयं में क्लेश नहीं, पर के साथ कहाँ क्लेश करे? पर-आत्मा में क्लेश देखता नहीं। पर के आत्मा में क्लेश है नहीं, वे तो क्लेशरहित आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया? किसके साथ क्लेश करे?

'जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ' वजन यहाँ है, हाँ! **जहाँ कहीं देखो, वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होता है।** इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि समस्त आत्माएँ एक ही हैं – ऐसा यहाँ नहीं कहना है। जहाँ देखो उसकी दृष्टि में से राग-द्वेष और शरीर से उठ गयी है, राग-द्वेष के भाव से, शरीर से उठकर (मैं) आत्मा ज्ञान हूँ – ऐसी हो गयी है; इसलिए ऐसा ही आत्मा जैसे अपने को देखता है – ऐसे दूसरे आत्मा को भी ऐसा देखता है। आत्मा दूसरे का है – ऐसा देखता है। रागादि, शरीरादि तो अजीव में जाते हैं। समझ में आया?

पहले जीव-अजीव का भेद कहा, फिर केवलज्ञानस्वभावी जीव कहा – ऐसा जाना उसे दूसरे के साथ कलह करना कहाँ रहा? दूसरे का पूजन करना कहाँ रहा? स्वयं ही पूजने योग्य – ऐसा आत्मा अपने ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसे दूसरे के साथ क्लेश, शत्रुता या पूजन – यह कुछ नहीं रहता। आहा...हा...! समझ में आया?

'जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ' जहाँ-जहाँ देखो वहाँ भगवान आत्मा (दिखता है)। आहा...हा...! धर्मी जीव अपने आत्मा को विकार और शरीर के संयोगरहित देखता है तो जैसी दृष्टि से स्वयं को देखता है, वैसी ही दृष्टि से दूसरे आत्माओं को देखता है। समझ में आया? दूसरे का आत्मा, यह रागवाला आत्मा देखे? राग तो विकार है। शरीरवाला आत्मा देखेगा? शरीर तो अजीव है। समझ में आया? दूसरे के आत्मा को भी, आत्मदृष्टि से स्वयं को जैसा देखा-राग और विकाररहित, शरीररहित वह आत्मा – ऐसा

जहाँ भान हुआ, ऐसी दृष्टि दूसरे आत्मा को भी आत्मा, आत्मा देखता है। जहाँ देखता है वहाँ आत्मा की पर्याय अपने (जैसी) देखता है। दूसरे प्रकार से ऐसा है। सूक्ष्म बात रखी है।

'जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ' इसका अर्थ क्या ? आत्मा दूसरा है – ऐसा देखता है। यह परमाणु आदि को देखे तो भी उसमें ज्ञान देखता है कि मैं इन्हें जाननेवाला हूँ, यह तो जड़ हैं। समझ में आया ? रागादि को जानता है तो जाननेवाला तो ज्ञान है, उस ज्ञान को जानता है। शरीर को जानते हुए ज्ञान है, उस ज्ञान को ज्ञान जानता है अर्थात् आत्मा ही जहाँ हो, वहाँ ज्ञात होता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

अपनी मौजूदगी में तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है – ऐसा जाना तो दूसरे की मौजूदगी को देखने पर भी उसका ज्ञान ही स्वयं का उसमें होता है, उस ज्ञान को ही स्वयं देखता है। इसलिए जहाँ देखो वहाँ आत्मा, आत्मा और आत्मा.... यह स्वयं का आत्मा का ज्ञान ही देखता है। अद्भुत बात, भाई ! ऐसा यह धर्म किस प्रकार का ? इसने कभी सुना नहीं है।

अनन्त काल में भटक-भटक कर मर गया। चौरासी के अवतार में भुक्का (निकल) गया। अनादि का आत्मा कहाँ नया है ? आत्मा कहीं नया होता है ? अनादि का है परन्तु अनादि का वह स्वयं कौन तत्त्व है, उसका ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान, चैतन्यज्ञान है – ऐसा कभी जाना नहीं। यह तो राग वह मैं, शरीर की क्रिया वह मैं, मैं पर का कुछ कर दूँ, पर से मुझमें कुछ होवे वह मैं, यह सब आत्मा को अनात्मा के रूप में माना है। समझ में आया ?

कोई अमुकभाई नहीं, सब आत्मा है – ऐसा जानें। उस समय जाननेवाले का ज्ञान जाननेवाले के ज्ञानरूप ज्ञातारूप से परिणमता है, उसे जाने ऐसे निश्चय की बात यहाँ की है। वह जैसा है – ऐसा जाने। समझ में आया ? उसकी पर्याय भी जैसी है, ऐसी जानें परन्तु उस पर्याय का ज्ञान होने पर ज्ञान स्वयं का होता है न ? सामनेवाले के दोष का ज्ञान हुआ परन्तु वह ज्ञान हुआ न ? उसमें ज्ञान हुआ (वह) तो स्वयं में हुआ है और स्वयं का ज्ञान हुआ है, दोष का ज्ञान नहीं। समझ में आया ? दूसरे के आत्मा, जड़ को देखनेवाले की मुख्यता में ज्ञान न हो तो यह है, ऐसा निर्णय किसने किया ? यह तो स्वयं जानता है, यह

तो स्वयं जानता है। जहाँ हो वहाँ मेरा ज्ञान, जहाँ हो वहाँ मेरा ज्ञान। हैं ? स्वयं का ज्ञान दिखता है – ऐसा कहते हैं।

मेरा ज्ञान आया था या नहीं ? वह पुस्तक नहीं, नहीं ? मेरा ज्ञान कहा था न ? हैं ? अभी रख दी लगती है। सेठिया का है न ? मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान, वहाँ कहा है न ? हैं ? लड़का मर गया, लड़के का लड़का (मर गया).... मुर्दा पड़ा था, उसकी माँ को कहे, क्या है ? मैं गायन बनाऊँ वह बोल.... रोने का क्या ? इसमें किसका रोना लगे ? रोनेवाला नहीं रे रहनेवाला रे..... रोनेवाला रहनेवाला नहीं है ! किसकी लगाना इसमें ? समझ में आया ? 'सेठिया' है, हाँ! सरदारशहर का गृहस्थ व्यक्ति है। अन्तर अरहन्त ध्याये, सम्यक्सूर्य उगसे जी.... मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... यह बहिनें रोवे तब कहे न ? मेरा पेट... मेरा पेट...। अब पेट रख न, पेट कब तेरा था ? लड़का मर जाये तो कहे मेरा पेट.... मेरा (पेट)। ऐसा, स्त्रियाँ बोलती हैं। बोलती हैं – ऐसा थोड़ा-थोड़ा सुना है। ऐसी उनकी मथने की सब रीति होती है, मूढ़ की।

यहाँ कहते हैं कि परन्तु 'गुणी जन सम्यक् सिद्ध प्रभु नित ध्याये, चैतन्य सूर्य उगसे जी, म्हारा ज्ञान....' मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... रतनलालजी ! दीपचन्द सेठिया है न ? दीपचन्द सेठिया, सरदारशहर का। पूरे दिन उनके घर में ऐसी ही बातें करते हैं। गृहस्थ व्यक्ति है, पाँच-सात लाख रुपये। गृहस्थ व्यक्ति.... बस ! यह सबको (कहे) मर गया लड़का, लड़के का लड़का... घर में मुर्दा पड़ा है, बड़ी बिल्डिंग है, पैसावाला है, लड़के की बहू से कहे क्या करना है ? रोना है ? नहीं, बापूजी ! आप कहो, फिर गीत बनाया। मुर्दे के पास यह गीत बोले.... फिर सगे-सम्बन्धी सभी लोग आये सभी साथ में गीत बोलने लगे.... रोना किसका ? इसमें किसका रोना ? समझ में आया ? यह गीत उस दिन वहाँ बोले थे, हाँ! हैं ?

'गुणीजन अर्थ ग्राही उपयोग, गुणीजन.....' पदार्थ जो है, उसे जाननेवाला मेरा उपयोग है, मेरा आत्मा अर्थ / वस्तु जो है, उसे जाननेवाला मेरा उपयोग है। मेरी चीज ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसे ग्रहण करनेवाला मेरा उपयोग है। 'चैतन्य निज प्राण छे जी....' समझ में आया ? 'गुणीजन ज्ञायक ज्योत जगाय, देखो तो शान्ति जीव में, जी'

किसकी लगायी इसमें ? ए... मोहनभाई ! तीन-तीन वर्ष का लड़का मर गया। वे गृहस्थ लोग इसलिए छोड़ो रोना ! किसका रोना-धोना ? वह तो आत्मा है, अब यहाँ से चला गया, इतने दिन यहाँ शरीर में रहा। अब अन्यत्र गया ? वहाँ कहाँ आत्मा नष्ट हो ऐसा है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह धर्मी के जीवन में क्षण-क्षण में वैराग्य होता है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! ऐसे प्रसंग में हो, परिवार में हो फिर भी मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... उस क्षण मैं तो जानने-देखनेवाला वह मेरा ज्ञान, बाकी तो वह (पुत्र) मेरा नहीं, राग मेरा नहीं, कोई मेरा नहीं। समझ में आया ? सही समय पर काम आये या नहीं ? बातें करे (काम न आवे) परन्तु जब मरण हो घर में बीस वर्ष का (लड़का) मर गया हो, फिर पता पड़े.... हैं ? अरे ! भाई मर गया, कौन मर जाता है ? आत्मा मरता होगा ? शरीर मरता होगा ? यह तो मिट्टी है, यह तो पर्याय-अवस्था बदली दूसरी हो गयी, राख की हो गयी। यहाँ थी (अब) राख की हो गयी। मरे कौन ?

आत्मा त्रिकाली सनातन शुद्ध चैतन्य है, उसके भान में कहते हैं। देखो ! समझ में आया ? देखो ! यह अन्तिम आया 'गुणीजन जड़सुख छे जी जंजाल' यह कल्पना की है कि इसमें सुख है और इस लड़के में सुख है, पैसे में सुख है; धूल है मूढ़ ! 'गुणीजन जड़ सुख छे जी जंजाल, आनन्दघन आप छे जी' मैं आनन्दघन आत्मा हूँ, आनन्द का धारक आत्मा। यह सही समय पर इसकी कसौटी होती है। निहालभाई ! यह बीस वर्ष का मर जाये और स्त्री छोड़कर बैठ जाये, और दूसरे रोने लगें.... हाय...हाय... ! क्या है परन्तु ? किसकी लगा रखी है ? श्मशान है यहाँ ? यहाँ तो आत्मा है। आहा...हा... !

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति है – ऐसा जहाँ अन्तरभान हुआ, कहते हैं कि वह सर्वत्र ज्ञान ही देखता है। ज्ञान अर्थात् यहाँ आत्मा। समझ में आया ? आहा...हा... ! **एक अद्वैत आत्मा का ही अनुभव आ रहा है, अनुभव के समय में तो अपने में ही लीन होता है।** अनुभव के काल में हमें जाननेवाला देख – ऐसा कहते हैं। **अनुभव की माता भावना है।** ऐसा कहकर बहुत लम्बा किया है, दृष्टान्त दिया है, जरा ! ठीक कहा है। **जैसे कोई खेत में जाये....** यह चने पकते हैं या नहीं ? चने... खेत में चने पकते हैं न ? चने,

उसकी नजर चने पर होती है, कितने चने हुए? ऐसी (नजर) होती है। पत्तों और जड़ पर नहीं होती। खेत होवे न दो-पाँच? उसकी नजर वहाँ (चने पर होती है)। यहाँ तो चना क्यों लिया है? चना खाने में तुरन्त ही मिठास लगती है न? कच्चा भी अच्छा लगता है और पका भी अच्छा लगता है। वह चना देखने जाये और वे गुच्छे हुए हों न? उस चने पर उसकी नजर होती है, उन पत्तों पर नहीं। कितने पके हैं? चने कितने हुए हैं? पूरे खेत में फिरे तो चने पर नजर (होती है)। फल अच्छा आया है चने का फल अच्छा आया है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वह डाली पत्ते, मूल को नहीं देखता और कहता है कि इस खेत में से पाँच मण चना निकलेगा।** ऐसा कहे, लो! इस एक बीघा में पाँच मण चना (निकलेगा), चना आयेगा, ऐसा कहते हैं। पत्तियाँ आयेंगी – ऐसा वह कहता है?

दूसरा दृष्टान्त दिया है, सोने में मणि जड़ी हुई हो। स्वर्ण में मणि जड़ी होती है न? **जब झवेरी के पास बेचने ले जाओ तब वह केवल मणियों को देखता है....** ऊँचा झवेरी अन्दर मणि-मणि देखता है। सोना किसलिए (देखे)? उसे तो मणि लेना है। मणि, मणि, मणि.... मणि स्वर्ण पर नजर नहीं और स्वर्णवाले के पास जाओ तो मणि नहीं देखता। वह सोना-सोना देखता है, बात सत्य है। समझ में आया? आहा...हा...!

इसी प्रकार भगवान आत्मा जहाँ देखो वहाँ मैं जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला.... मेरे जानने में ज्ञान का फल जानने का आया है, उसे वह देखता है। समझ में आया? दृष्टान्त ठीक किया है। इन लोगों का कुछ चलता होगा, चना... चना... चना... देखे, मीठे सरस लगते हैं। चने पर नजर है, वह चने देखता है। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है – ऐसी जिसे आत्मा की श्रद्धा और भान हुआ है, वह जहाँ हो वहाँ आत्मा का ही पाक देखता है। मैं जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला.... दूसरा मुझमें है नहीं, मैंने दूसरा जाना-देखा नहीं, मैं ही मुझे जानने -देखनेवाला हूँ। कहो, समझ में आया? यह सब (लिया है)। **व्यवहार निश्चय की अपेक्षा से असत्य है।**

किसके साथ मैत्री और किसके साथ (क्लेश) करना? समझ में आया? एक

दृष्टान्त सर्वार्थसिद्धि में दिया है, वह जरा ठीक लगता है। सामायिक का, यह आत्मा की सामायिक किसे कहें कि –

एकत्वेन प्रथमं गमनं समयः, समय एव सामयिकं,
समय प्रवर्तानमस्येति वापिगृह्य सामायिकं॥ अ. ७, सूत्र २१॥

आत्मा के साथ एकमेक हो जाना, आत्मामय हो जाना, वह सामायिक है। यह सामायिक लेकर बैठते हैं न? वह सामायिक कहाँ है? आत्मा का भान तो कुछ है नहीं, सामायिक करके बैठे, किसकी? धूल की सामायिक? जिसने आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप को देखा, जाना है, वह ज्ञान में लीन हो जाता है, उसे सामायिक कहते हैं। कहो, समझ में आया? सामायिक – सम-समतास्वरूप चैतन्य ज्ञान में ज्ञान की लहर में, लहर में लीन हो गया, जो समतास्वरूप कायम है, उसके अन्दर में वर्तमान पर्याय से समता में लीन हो गया, उसे सामायिक कहते हैं। समझ में आया? बहुत से यह सामायिक करते हैं या नहीं? हम सामायिक करते हैं! ऐ....शोभाचन्दजी! यह सब करते हैं, यह सब प्रतिमाधारी नाम धराकर सामायिक करते हैं, सबेरे-दोपहर सामायिक करते हैं। किसकी सामायिक? आत्मा जाने बिना कहाँ से होगी? पहले आत्मा ही कौन है, इसकी खबर बिना एकाग्र किसमें होगा? यह सब ऐसे के ऐसे.... आहा...हा...!

मुमुक्षु – हिले-चले बिना स्थिर रहते हैं।

उत्तर – हिले-चले कौन? शरीर नहीं चले, उसमें इसके बाप का क्या हुआ? आत्मा अन्दर हलचल करता है। खलबलाहट... पुण्य-पाप के विकल्प उठाकर मेरे हैं, और उस पर दृष्टि पड़ी है, वह सब खलबलाहट हो रहा है। णमोकार गिनता हो या भगवान के भजन का विकल्प उठता हो, वह विकल्प मेरा है (ऐसी) दृष्टि वहाँ पड़ी है। वस्तु ऐसी भिन्न है, उसका तो भान नहीं... भान नहीं और विकल्प पर दृष्टि है तो वह सामायिक में है या मिथ्यात्व में है? मिथ्यात्व ही है। ऐ.... भगवानभाई!

श्रोता – नये व्यक्ति हैं।

उत्तर – आ गये न अब, पकड़ में आ गये अब।

आत्मा कैसा है? आत्मा कौन है? यह जाने बिना, उसके साथ एकमेक कौन

होगा ? ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न ? सामायिक की व्याख्या की न ? सर्वार्थसिद्धि, हाँ! पूज्यपादस्वामी... आहा...हा... ! **आत्मा के साथ एकमेक हो जाना, आत्मामय हो जाना, वह सामायिक है।** आत्मा पहले सम्यग्ज्ञान में, दर्शन में भासित हुए बिना एकमेक होना कहाँ से होगा ? यह तो देह की क्रिया मैं करता हूँ, ऐसा बैठा तो (मानता है कि) मैं बैठा.... कुछ राग होवे तो यह मेरा आत्मा है – ऐसा तो यह मानता है। अनात्मा को आत्मा मानता है तो स्थिर किसमें होगा ? (अनात्मा में) एकाग्र हुआ। आत्मा रागरहित और शरीररहित चीज है, उसका ज्ञान हो, वह उसमें स्थिर हो, उसे सामायिक कहते हैं। यह ४० (गाथा पूर्ण) हुई।

☆ ★ ☆

अनात्मज्ञानी कुतीर्थों में भ्रमता है

ताम कुतित्थइँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ॥४१॥

सदगुरु वचन प्रसाद से, जाने न आतम देव।
भ्रमे कुतीर्थ तब तलक रे, करे कपट के खेल॥ ४१॥

अन्वयार्थ – (गुरूहु पसाएं जाम अप्पादेउ णवि मुणेइ) गुरु महाराज के प्रसाद से जब तक एक अपने आत्मारूपी देव को नहीं पहचानता है **(ताप कुतित्थिइँ परिभमइ)** तब तक मिथ्या तीर्थों में घूमता है **(ताप धुत्तिम करेइ)** तब ही तक धूर्तता करता है।

☆ ★ ☆

अनात्मज्ञानी कुतीर्थों में भ्रमता है। कुतीर्थ शब्द का प्रयोग किया है। फिर दूसरा प्रयोग करेंगे।

ताम कुतित्थइँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ॥४१॥

गुरु महाराज की कृपा से जब तक एक अपने आत्मारूपी देव को नहीं

पहचानता.... भगवान आत्मा, देह-देवल में आत्मा स्वयं सच्चिदानन्ददेव है। ये हड्डियाँ और चमड़ी मिट्टी और धूल है। भगवान आत्मा अन्दर देह-देवल में विराजमान है। अपने देव के स्वरूप को न जाने, **तब तक मिथ्या तीर्थों में भटकता है।** यह शब्द प्रयोग किया है न? **ताम कुतित्थिइ** शब्द प्रयोग किया है पहला भाई! कुतीर्थ शब्द प्रयोग किया है, हाँ! फिर उसमें लेंगे। फिर इस देव को लेंगे। बाहर कहाँ तेरा भगवान है? यह बाद में (लेंगे) परन्तु पहले तो कुतीर्थ (लेंगे)। जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है, आत्मा देवस्वरूप है, उसका जहाँ भान नहीं है, वह जहाँ-तहाँ भटका करता है। नदी, सागर में स्नान करता है। है न? नदी और सागर में स्नान करने जाता है। वहाँ स्नान करने से कल्याण (होता है)? वहाँ बहुत मछलियाँ स्नान करती हैं। समझ में आया? वहाँ नहाने जाओ, वहाँ अपना कल्याण होगा। शत्रुंजय में नहाने जाओ, कल्याण होगा.... धूल में (नहीं होगा)। वहाँ तो बहुत मछलियाँ नहाती हैं, वहाँ नहाने से कल्याण होता होगा? जहाँ-तहाँ कुतीर्थ में **रेत और पत्थर के ढेर करने से....** पत्थर लगाते हैं न? दो-दो, तीन-तीन, देवी-देवता और **पर्वत से गिरने से, अग्नि में जलकर मरने से भला होगा....** ऐसा मानते हैं न?

अभी किसी ने कहा कि एक व्यक्ति मरा है। शंकर के पास सिर दिया है, हाँ! राज्य लेने के लिए, मर गया, ऐसे का ऐसा मूढ़ जीव। धूल में भी वहाँ राज्य नहीं मिलता। ऐसे कुतीर्थ में आत्मा के देव को जाने बिना पाप है, पुण्यलाभ नहीं। **लोक मूढ़ता है।** यह लोक मूढ़ता है। समझ में आया?

जब तक यह जीव अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, संसार में आसक्त है, तब तक इसे इन्द्रियों के इष्ट विषयों की प्राप्ति की कामना रहती है और उसके बाधक कारण मिटाने की लालसा रहती है। ऐसा कहते हैं। **मिथ्यामार्ग के उपदेशकों द्वारा जिस किसी की पूजा-भक्ति से और जहाँ-तहाँ जाने से विषयों की प्राप्ति में मदद होना जानते हैं, उसकी भक्ति पूजा करते हैं।** देखो न! कुतीर्थ में कर्ता है या नहीं? यहाँ तो भगवान के नाम से करता है, अभी तो। **मिथ्यादेवों की मिथ्या गुरुओं की, मिथ्या धर्मों की और मिथ्या तीर्थों की बहुत भक्ति करता है।** नदी, सागर में स्नान करे,

इस्लाम माने। **खेल-तमाशा में विषय का पोषण करके धर्म मान लेता है।** यह मूढ़ता है, कहते हैं। समझ में आया? इत्यादि बात करते हैं। लो!

आत्मानुभव को ही निश्चय धर्म मानना, सम्यग्दर्शन है। भगवान आत्मा को शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनुभव करना, वह आत्मदेव और उसका नाम सम्यग्दर्शन है, वह देव की पूजा है। कुतीर्थ में जहाँ-तहाँ भटकने से कुछ मिले ऐसा नहीं है। गंगा में स्नान करेंगे तो मैल जाएगा.... शरीर का मैल जाएगा, आत्मा का मैल नहीं जाएगा। तुम्बी, तुम्बी का दृष्टान्त नहीं आता? कड़वी तुम्बी साथ में ले जाना, उसने कहा। आता है न? तीर्थयात्रा को निकले थे, तो साथ में कड़वी तुम्बी दी, इसे भी साथ में स्नान कराना, कराते-कराते सबमें नहाये और तुम्बी को स्नान कराकर आये, तीर्थ की हुई तुम्बी लाओ, काटो, टुकड़े करो.... (टुकड़े होने के बाद कहा) कड़वी है.... इतना-इतना स्नान किया (तो भी) तुम्बी की कड़वाहट तो मिटी नहीं और तुम इतने-इतने तीर्थ करने गये और आत्मा के भान बिना तुम्हारी कड़वाहट तो मिटी हुई दिखती नहीं। तीर्थ कर-करके यह सब भ्रम दिखता है। ऐसा दृष्टान्त आता है। तुम्बी को सब तीर्थ कराये परन्तु तुम्बी तो कड़वी रही। ऊपर से मैल निकला, अन्दर तो कड़वाहट रही। इसी प्रकार बाहर से स्नान करे, जहाँ-तहाँ गिरे परन्तु भगवान आनन्द शुद्ध आनन्दकन्द है – ऐसा न मानकर उसे दया, दान के विकल्प से लाभ होता है और इस पर से मुझे लाभ होता है, मुझे लाभ मिलता है, और इससे कुछ प्रतिकूलता टलती है, सन्तानहीनता मिटती है, पुत्रादि होते हैं और पैसा मिलता है, यह सब भ्रम तो पड़े हैं। भ्रम का जहर तो तेरा उतरा नहीं, तूने किसका तीर्थ किया? समझ में आया? यह तो फिर व्यवहार की क्रिया है, वह निमित्तरूप है – ऐसा कहेंगे।

☆ ★ ☆

निज शरीर ही निश्चय से तीर्थ व मन्दिर है

तित्थइँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु।
देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु॥४२॥

तीर्थ-मन्दिरे देव नहिं, यह श्रुति केवलि वान।
तन मन्दिर में देव जिन, निश्चय करके जान॥ ४२॥

अन्वयार्थ – (सुइकेवलि इम वुत्तु) श्रुतकेवली ने ऐसा कहा है कि **(तित्थहिं देविल देउ णवि)** तीर्थक्षेत्रों में व देवमन्दिर में परमात्मदेव नहीं है **(णिरूत्तु एहउ जाणि)** निश्चय से ऐसा जान कि **(देहादिवलि जिणु देउ)** शरीररूपी देवालय में जिनदेव हैं।

☆ ★ ☆

निज शरीर ही निश्चय से तीर्थ व मन्दिर है। अब यह अन्दर का आया।

तित्थइँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु।
देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु॥४२॥

श्रुतकेवली भगवान, जिस ज्ञान में पूर्ण सर्वज्ञ आदि अथवा श्रुतकेवलियों ने **तीर्थक्षेत्रों में और देवमन्दिर में परमात्मादेव नहीं.....** ऐसा कहा है परन्तु **णिरुतु** हाँ! **णिरुतु** अर्थात् निश्चय से। समझ में आया? श्रुतकेवली और भगवान, सन्तों ने बाहर देवालय में देव नहीं है, परमात्मा वहाँ नहीं है (– ऐसा कहा है)। निश्चय से परमात्मा नहीं। निश्चय से परमात्मा देह-देवल में तेरा आत्मा विराजमान है। समझ में आया?

निश्चय से ऐसा जान.... देखा? निश्चय से है न पाठ? **णिरुतु** ऐसा जान, ऐसा। **'देहादेवलि जिणु देउ' शरीररूपी देवालय में जिनदेव है।** भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप विराजमान आत्मा है, उसे तू पहचान और उसकी पूजा कर, यह देव की पूजा है। समझ में आया? उन कुतीर्थों को लेकर अब यहाँ थोड़ा बाहर का डाला है। वहीं का वहीं भटका करे, सम्मेदशिखर और वह यहाँ है न, शत्रुंजय, वहाँ मानो भगवान है। वहाँ तो भगवान की स्थापना है। वास्तविक भगवान भी वहाँ नहीं, वे पर भगवान परन्तु वास्तविक वहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? जो भगवान की स्थापना की है, वे वास्तविक भगवान भी वहाँ नहीं। वास्तविक भगवान तो समवसरण में विराजमान तीर्थंकररूप से वे वास्तविक भगवान हैं और वहाँ तो उन्हें देखेगा तो शरीर और वाणी तुझे अकेले दिखेंगे, भगवान नहीं दिखेंगे; उनका आत्मा नहीं दिखेगा। वह आत्मा कब दिखता है? कि तू तेरा देखेगा तो उनका आत्मा तुझे ज्ञात होगा। उनके आत्मा का ज्ञान कब होता है कि यह भगवान सर्वज्ञ

परमेश्वर हैं ? इस रागरहित तेरे आत्मा का ध्यान तू करे तब यह भगवान है – ऐसा तुझे ख्याल में आयेगा नहीं तो शरीर, वाणी दिखेंगे, समवसरण दिखेगा, लोग दिखेंगे, इन्द्र दिखेंगे आहा...हा... ! मानो ऊपर से आये गंगाधर और विद्याधर.... समझ में आया ? साक्षात् परमात्मा विराजते हों तो वहाँ तुझे क्या दिखेगा ? परमात्मा, उनका आत्मा दिखेगा ? उनका आत्मा कब दिखेगा ? कि तू स्वयं जब उसे राग की आँख छोड़कर, पर को देखना छोड़कर और स्व को देखने जाये, तब तेरा आत्मा ज्ञात होगा (और तब) परमात्मा ऐसे होते हैं (ऐसा ज्ञात होगा)। समझ में आया ?

शरीररूपी देवालय में जिनदेव है। बाहर में तो व्यवहार है। शुभभाव, पूजा, भक्ति का शुभभाव व्यवहार है परन्तु परमार्थ से वहाँ देव है (ऐसा नहीं)। तेरा वह नहीं और परमार्थ से भगवान विराजते हैं, जो आत्मा, वह आत्मा यहाँ नहीं, वह तो स्थापना निक्षेप है और स्थापना निक्षेप में भी, स्थापना में भी भगवान के गुण गाते हैं न ? या मूर्ति के गुण गाते हैं ? भगवान ऐसे, तुम भगवान ऐसे, तुम भगवान ऐसे, तुम भगवान ऐसे.... परन्तु इस आत्मा की दृष्टि होवे तो उसे ऐसे शुभभाव के भाव को व्यवहार कहा जाता है परन्तु जिसे आत्मदृष्टि नहीं और अकेला वहीं देखता है, उसे कहते हैं कि आत्मा देव यहाँ है, वहाँ बाहर में कहीं नहीं है। अपने देव को छोड़कर दूसरे देव को पूजने जाये, वह पूजन सच्ची नहीं होती। समझ में आया ? इसकी विशेष व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)